



गीता का परिचय एवं संक्षिप्त इतिहास

सुशीला चंद्रा, शोधार्थी, दर्शनशास्त्र विभाग
विनोबाभावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखंड, भारत

ORIGINAL ARTICLE



Author

सुशीला चंद्रा, शोधार्थी

E-mail : scphdbhu2016@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 03/04/2026
Revised on : 04/06/2026
Accepted on : 13/06/2026
Overall Similarity : 00% on 05/06/2026



Plagiarism Checker X - Report

Originality Assessment

0%

Overall Similarity

Date: Jun 5, 2026 (12:56 PM)
Matches: 0 / 2935 words
Sources: 0

Remarks: No similarity found,
your document looks healthy.

Verify Report:
Scan this QR Code



शोध सार

श्रीमद्भगवद्गीता हमारे धर्मग्रन्थों में एक अत्यंत ही तेजस्वी और निर्मल हीरा है। आत्मविद्या के गूढ़ और पवित्र तत्वों को थोड़े में और स्पष्ट रीति में समझा देने वाला गीता के समान बालबोध ग्रन्थ संसार के साहित्य में नहीं मिल सकता। इसमें समस्त उपनिषदों का सार है। इसी से इसका पूरा नाम 'श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषद्' है। गीता में युद्ध में किंकर्तव्यविमूढ़ हुए अर्जुन को दिया गया उपदेश है। अतः श्रीमद्भगवद्गीता कुछ शब्दों, वाक्यों, श्लोकों उनके भावार्थों व उन पर लिखे गए भाष्यों व टीका-टिप्पणियों का संकलन मात्र नहीं है, अपितु इसे सभी देश कालों में प्रासंगिक व मानवीय समस्याओं से संबंधित एक ऐसे पथ-प्रदर्शक ग्रंथ के रूप में देखा जाता है जो सहस्रों वर्षों के पश्चात् आज भी न केवल मानवीय समस्याओं की ओर संकेत करता है बल्कि उनका सर्वोत्तम समाधान भी देता है। भगवद्गीता का प्रयोजन मनुष्य को भौतिक संसार के अज्ञान से निकालना है। प्रत्येक मानव अनेक प्रकार की समस्याओं से घिरा रहता है। जिस प्रकार अर्जुन कुरुक्षेत्र में युद्ध के समय विभिन्न मानसिक कठिनाइयों में फंसे हुए थे। अर्जुन को श्रीकृष्ण ने शिक्षा दी जिसके फलस्वरूप भगवद्गीता का प्रवचन हुआ। सिर्फ अर्जुन ही नहीं बल्कि हम में से प्रत्येक व्यक्ति इस भौतिक अस्तित्व के कारण चिंताओं से घिरा हुआ है। गौतम बुद्ध ने भी कहा है कि संसार दुःखों से पूर्ण है। संसार दुःखमय है परंतु उन्होंने दुःखों से निकलने का मार्ग भी प्रशस्त किया ठीक वैसे ही अर्जुन को श्रीकृष्ण दुःखों के साथ-साथ उससे निकलने का मार्ग भी प्रदर्शित करते हैं। भगवद्गीता के सारे उपदेशों का उद्देश्य शुद्ध चेतना को जागृत करना है। मनुष्य को अपने जीवन के उद्देश्य को समझना चाहिए और इसका उपदेश वैदिक ग्रन्थों में दिया गया है जिसका सार गीता में हमें मिलता है।

मुख्य शब्द

सांख्य योग, कर्म, भक्ति, ज्ञान, मोक्ष, आत्मा.

गीता का परिचय एवं संक्षिप्त इतिहास

गीता का संदेश कई हजार वर्ष पूर्व कुरुक्षेत्र के उत्तेजनापूर्ण रणांगन में दिया गया था। अनादि काल से गीता पूर्व और पश्चिम दोनों ही देशों के अनेक महान विचारकों और दार्शनिकों के लिए प्रेरणा का मुख्य स्रोत रही है। भगवद्गीता प्राचीन ऐतिहासिक महाकाव्य महाभारत का एक भाग है जिसकी रचना महर्षि व्यास ने लगभग 3100 ईसा पूर्व में की थी। भगवद्गीता के 18 अध्याय महाभारत के छठे सर्ग जिसे 'भीष्म पर्व' के नाम से जाना जाता है में पाए जाते हैं, जिसमें कुल मिलाकर 117 अध्याय हैं। प्रारंभ में व्यास ने महाभारत के 8800 मुख्य श्लोक लिखे बाद में उनके शिष्यों वैशम्पायन और सूत ने इसमें और ऐतिहासिक विवरण जोड़े जिसके परिणामस्वरूप अंततः महाभारत में 1,00,000 श्लोक हो गए।

भगवद्गीता कुरुक्षेत्र में युद्ध के प्रथम दिन कही गई थी। संजय धृतराष्ट्र को श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच हुए पवित्र संवाद का वर्णन करते हैं। इस प्रकार भगवद्गीता संजय को प्राप्त हुई और उन्होंने समस्त मानवता के आध्यात्मिक कल्याण के लिए धृतराष्ट्र को सुनाई।

उद्देश्य

- गीता के इतिहास के सम्बंध में संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना।
- गीता के मुख्य विषय से अवगत कराना।
- तनाव एवं चिन्ता के इस युग में गीता के समभाव उपदेश को जन-जन तक पहुँचाना।
- नैतिक दुविधाओं के बीच में स्वयं को धार्मिकता से जोड़े रखने का संदेश देना।

गीता के अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता के 18 अध्याय हैं जिसमें कुल 700 श्लोक हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के 18 अध्यायों का संक्षिप्त परिचय क्रमशः निम्न प्रकार है:

प्रथम अध्याय: प्रथम अध्याय का नाम अर्जुन विषादयोग है। कृष्ण और अर्जुन युद्ध स्थल पर सिर्फ युद्ध के लिए उपस्थित नहीं होते, न ही किसी कौतुहलवश एकत्रित होते हैं बल्कि जीवन की प्रगाढ़ समस्या के समाधान के लिए प्रवृत्त होते हैं। शौर्य और धैर्य, साहस और बल इन चारों गुणों से अर्जुन का व्यक्तित्व निर्मित हुआ था, साथ ही अर्जुन में क्षमा और प्रज्ञा के गुण भी मौजूद थे परंतु युद्धस्थल पर पहुँचकर अपने प्रियजनों को देखते ही अर्जुन के चित्त पर एक दूसरे ही प्रकार के मनोभाव का आक्रमण हुआ तभी वह किंकर्तव्यविमुढ़ होकर धनुष बाण एक और डाल कर बैठ जाते हैं। श्रीकृष्ण जब अर्जुन को देखते हैं तब वह अर्जुन की स्थिति समझ जाते हैं और उन्हें उस स्थिति से निकालने के लिए जो तत्व चर्चा करते हैं उसे ही गीता कहा गया है।

द्वितीय अध्याय: द्वितीय अध्याय का नाम सांख्य योग है। अर्जुन को निराशाजनक स्थिति में रोते देखकर कृष्ण ने उनको ध्यान दिलाया कि अर्जुन जैसे वीर योद्धा को हृदय की ऐसी दुर्बलता शोभा नहीं देती और न ही क्षत्रिय होने के नाते उनके लिए यह उचित है। अर्जुन युद्ध न करने के जितने भी तर्क श्रीकृष्ण को देते हैं उसे सुनकर श्रीकृष्ण कहते हैं कि ऊपर से सुनने पर तुम्हारी बातें प्रज्ञावान जान पड़ती हैं परंतु तुम्हारी बातें प्रज्ञावाद का झूठा रूप है। जीना-मरना, जन्म लेना और बढ़ना, विषयों का आना-जाना, सुख-दुख का अनुभव ये तो संसार में होते ही हैं। काल की चक्रगति इन सब स्थितियों को लाती है और ले जाती है। जीवन के इस स्वभाव को जान लेने पर फिर शोक नहीं होता। श्रीकृष्ण कहते हैं कि जीवन नित्य और अनित्य का संयोग है। नित्य जीव के लिए शोक करना और अनित्य शरीर को बचाने की चिन्ता व्यर्थ है। ये दोनों अपरिहार्य हैं।

तृतीय अध्याय: तृतीय अध्याय में कर्मयोग की शिक्षा श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दी है। सांख्य की व्याख्या सुनकर अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते हैं कि सांख्य और योग इन दोनों मार्गों में आप किसे अच्छा समझते हैं और क्यों नहीं यह निश्चित कहते हैं कि मैं इन दोनों में से किसे अपनाऊँ? इस पर कृष्ण ने भी उतनी ही स्पष्टता से उत्तर दिया कि लोक में दो जीवन दृष्टियाँ हैं – सांख्यवादियों के लिए ज्ञान योग और कर्म मार्गियों के लिए कर्मयोग। कृष्ण कहते हैं कि कोई व्यक्ति चाह कर भी कर्म छोड़ नहीं सकता। प्रकृति तीनों गुणों के प्रभाव से व्यक्ति को कर्म करने के लिए बाध्य करती है। कर्म से बचने वालों के प्रति एक बड़ी शंका है वह यह कि वह ऊपर से तो कर्म छोड़ बैठते हैं पर मन ही मन उसमें डूबे रहते हैं। इसे ही श्रीकृष्ण मिथ्याचार कहते हैं। मन में कर्मेन्द्रियों को रोक कर कर्म करना ही सरल मानवीय मार्ग है फिर भी कृष्ण लोक संग्रह की भी शिक्षा देते हैं।

चतुर्थ अध्याय: चौथे अध्याय में जिसका नाम ज्ञान-कर्म-संन्यास योग है, यह बताया गया है कि ज्ञान प्राप्त करके कर्म करते हुए भी कर्म-संन्यास का फल किस उपाय से प्राप्त किया जा सकता है। श्रीकृष्ण यहीं पर उपदेश देते हुए कहते हैं कि:

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

अर्थात् जब जब धर्म की ग्लानि होती है तब-तब मनुष्यों के बीच भगवान का अवतार होता है, अर्थात् भगवान मूर्त रूप लेकर धरती पर धर्म को बचाने के लिए अवतरित होते हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं:

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दृष्टताम् ।
धर्म संस्थापनार्थं सम्भवामि युगे-युगे ॥

पाँचवाँ अध्याय: पाँचवें अध्याय में कर्म सन्यास योग में अपनी पूर्व की बातों को युक्तियों के द्वारा और भी दृढ़ रूप में रखा गया है। कर्म सन्यास योग में कर्म के साथ जो मन का संबंध है उसके संस्कार पर या उसे विशुद्ध करने पर विशेष बल दिया गया है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि योग की उच्च अवस्था प्राप्त करने पर सांख्य और योग में कोई भेद नहीं रह जाता। व्यक्ति को समान फल की प्राप्ति होती है। श्रीकृष्ण पाँचवें अध्याय में कर्मयोग और साधु पुरुष के बारे में बताते हुए कहते हैं कि मैं सृष्टि के हर जीव में समान रूप से रहता हूँ। अतः प्राणी को समदर्शी होना चाहिए।

छठा अध्याय: छठा अध्याय आत्मसंयम योग है जिसका विषय नाम से ही स्पष्ट है। जितने भी विषय हैं उन सबसे इंद्रियों का संयम यही कर्म और ज्ञान का निचोड़ है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो व्यक्ति सुःख और दुःख में समान स्थिति में रहता है वो योगी है और वास्तव में यही योग है।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येना त्मैवात्मनाजितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥

अर्थात् जिसने मन को जीत लिया है उसके लिए मन सर्वश्रेष्ठ मित्र है, किंतु जो ऐसा नहीं कर पाया उसके लिए मन सबसे बड़ा शत्रु बना रहेगा।

सातवाँ अध्याय: सातवाँ अध्याय ज्ञान विज्ञान योग है। सृष्टि के नानात्व का ज्ञान विज्ञान है और नानात्व से एकत्व की ओर प्रगति ज्ञान है। ये दोनों ही दृष्टि मानव के लिए उपयोगी है और उचित भी। विज्ञान की दृष्टि से प्रकृति के दो रूप हैं अपरा और परा। अपरा प्रकृति के आठ तत्व हैं— पंचभूत, मन, बुद्धि और अहंकार। जब मानव का जन्म होता है तब जिससे उसका जन्म होता है उसमें ये आठ तत्व मौजूद रहते हैं परंतु यह जड़ है। आगे ईश्वर के संपर्क से जो चेतना आती है उस परा प्रकृति कहते हैं, वही जीव है। आठ तत्वों के साथ मिलकर जीव नवाँ तत्व हो जाता है। श्रीकृष्ण कहते हैं की पांच तत्व मन, बुद्धि भी मैं हूँ, मैं ही संसार की उत्पत्ति करता हूँ और विनाश भी मैं ही करता हूँ। मेरे भक्त चाहे जिस प्रकार भजें परंतु अंततः मुझे ही प्राप्त होते हैं। मैं योग माया से अप्रकट रहता हूँ और मुझे केवल साधारण मनुष्य ही समझते हैं।

आठवाँ अध्याय: इस अध्याय में श्रीकृष्ण अर्जुन के द्वारा पूछे गये ब्रह्म क्या है? आदि प्रश्नों का उत्तर देते हैं। उपनिषदों में अक्षर विद्या का विस्तार से वर्णन हुआ है। गीता के अनुसार जीव और शरीर की संयुक्त रचना का ही नाम अध्यात्म है।

गीता के अनुसार परम सत्य ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान के नाम से जाना जाता है। अर्जुन श्रीकृष्ण से प्रश्न करते हैं कि यज्ञ का स्वामी कौन है और वह शरीर में कैसे रहता है? और मृत्यु के समय भक्ति में लगे रहने वाले आपको कैसे जान पाते हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं कि अविनाशी और दिव्य जीव ब्रह्म कहलाता है और उसका नित्य स्वभाव अध्यात्म कहलाता है। जीवों के भौतिक शरीर से संबंधित गतिविधि कर्म या सकाम कर्म कहलाती है।

नवम अध्याय: नवें अध्याय को राजगुह्यायोग कहा गया है, अर्थात् यह अध्यात्म विद्या विद्याराज्ञी है और यह गुह्य ज्ञान सबमें श्रेष्ठ है। गीता में कहा गया है कि राजा शब्द का एक अर्थ मन भी था इसलिए मन की दिव्य शक्तियों को किस प्रकार ब्रह्ममय बनाया जाए इसकी युक्ति ही राजविद्या है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि ब्रह्मतत्त्व महत्वपूर्ण है क्योंकि उसी से व्यक्त जगत् का बार-बार निर्माण होता है। वेद का समस्त कर्मकाण्ड यज्ञ, अमृत और मृत्यु, सन्त और असन्त और जितने भी देवी-देवता हैं, सबका अन्त ब्रह्म में है।

दसवाँ अध्याय: दसवाँ अध्याय का नाम विभूतियोग है। इसका सार यह है कि लोक में जितने देवता हैं सब एक ही भगवान की विभूतियाँ हैं, मनुष्य के समस्त गुण और अवगुण भगवान की शक्ति के ही रूप हैं। कोई व्यक्ति पीपल की पूजा कर रहा है, कोई पहाड़ की, कोई नदी या समुद्र की, कोई उनमें रहने वाले जीवों की। सृष्टि में कितने देवता हैं इसका कोई अंत नहीं है। भागवतों में सभी की सत्ता को स्वीकार करते हुए सभी ईश्वर हैं और सभी में ईश्वर की सत्ता स्वीकार कर एक नई दृष्टि प्रदान की। श्रीकृष्ण कहते हैं:

अहं सर्वस्य प्रभवो मंतः सर्वम् प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥

ग्यारहवाँ अध्याय: ग्यारहवें अध्याय को विश्वरूप दर्शन योग कहा गया है। इसमें अर्जुन ने भगवान के विश्व रूप को देखा। विराट रूप का अर्थ है मानवीय धरातल और परिधि से बाहर, जो अनंत विश्व का रचनाकार है, प्राण है, उसका साक्षात् दर्शन, परंतु जब भगवान अर्जुन को अपने विराट रूप का दर्शन करवाते हैं तो अर्जुन का मस्तिष्क फटने लगता है और वह प्रार्थना करने लगता है कि मानव के लिए ईश्वर का जो स्वाभाविक रूप में, उसी रूप में भगवान प्रकट हों क्योंकि वही मानव के लिए पर्याप्त है। आगे श्रीकृष्ण कहते हैं कि अर्जुन तुम मेरे जिस रूप को देख रहो उसे देख पाना अत्यन्त दुष्कर है। यहाँ तक कि देवता भी इस अत्यंत प्रिय रूप को देखने की ताक में रहते हैं।

बारहवाँ अध्याय: बारहवाँ अध्याय भक्ति योग है। इसमें अर्जुन श्रीकृष्ण से पूछते हैं, पार्थ जो आपकी सेवा में सदैव तत्पर रहते हैं या जो अव्यक्त निर्विशेष ब्रह्म की पूजा करते हैं, इन दोनों में से किसे अधिक पूर्ण सिद्ध माना जाए?

श्रीकृष्ण ने साकार और निराकार दोनों की शिक्षा दी है। दोनों ही रास्ते से परमेश्वर की प्राप्ति होती है। सगुणवादी भक्त अपनी सारी शक्ति से परमेश्वर की सेवा करता है। जो लोग भगवान की प्रत्यक्ष पूजा न करके, अप्रत्यक्ष विधि से उसी उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं वे भी अंततः श्रीकृष्ण को प्राप्त करते हैं।

तेरहवाँ अध्याय: तेरहवाँ अध्याय में प्रकृति, पुरुष तथा चेतना के संबन्ध में विस्तार से श्रीकृष्ण बताते हैं। अर्जुन प्रकृति, पुरुष, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, ज्ञान तथा ज्ञेय के विषय में जानने के इच्छुक थे और इसके संबन्ध में प्रश्न पूछते हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह शरीर क्षेत्र है और इस शरीर को जानने वाला क्षेत्रज्ञ है। यह शरीर बद्धजीव के लिए कर्मक्षेत्र है। बद्धजीव इस संसार में बंधा हुआ है और वह भौतिक प्रवृत्ति पर अपना प्रभुत्व प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार प्रकृति पर प्रभुत्व दिखाने की क्षमता के अनुसार उसे कर्म क्षेत्र प्राप्त होता है। यह कर्म क्षेत्र शरीर है और यह शरीर इंद्रियों से बना है। इसलिए बद्ध जीव के लिए यह शरीर क्षेत्र है जो व्यक्ति अपने आपको शरीर मानता है वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है।

चौदहवाँ अध्याय: चौदहवाँ अध्याय का नाम गुणत्रय विभाग योग है। यह विषय समस्त वैदिक दार्शनिक और पौराणिक तत्त्व चिन्तन का निचोड़ है— सत्त्व, रज, तम नामक तीन गुण—त्रिको की अनेक व्याख्याएँ हैं। गुणों की साम्यावस्था को गीता में प्रकृति कहा गया है। गुणों के वैषम्य से ही वैकृत सृष्टि का जन्म होता है। अकेला सत्त्व शांत स्वभाव से निर्मल प्रकाश की तरह स्थिर रहता है और अकेला तम भी जड़त्व निश्चेष्ट रहता है, किंतु दोनों के बीच में छाया हुआ रजोगुण उन्हें चेष्टा के धरातल पर खींच लाता है। गति तत्त्व को रजस कहा गया है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि रजोगुण की उत्पत्ति असीम आकांक्षाओं तथा तृष्णाओं से होती है और इसी के कारण से यह देहधारी जीव सकाम कर्मा से बंध जाता है।

पन्द्रहवाँ अध्याय: पन्द्रहवाँ अध्याय पुरुषोत्तम योग है। इसमें विश्व का अश्वत्थ के रूप में वर्णन किया गया है। यह अश्वत्थ रूपी संसार महान विस्तारवाला है। देश और काल में इसका कोई अंत नहीं है किंतु इसका जो मूल है जिसे ऊर्ध्व वह कहते हैं। वह ब्रह्म ही है। एक ओर वह परम तेज जो विश्वव्यापी अश्वत्थ को जन्म देता है, सूर्य और चंद्र के रूप में प्रकट है, दूसरी ओर वही एक चैतन्य केन्द्र में या प्राणी शरीर में आया हुआ है।

सोलहवाँ अध्याय: सोलहवाँ अध्याय में देवासुर संपत्ति का विभाग बताया गया है। आरंभ में ही ऋग्वेद में सृष्टि की कल्पना दैवी और आसुरी शक्तियों के रूप में की गई है। यह सृष्टि के द्विविरुद्ध रूप की कल्पना है, एक अच्छा और दूसरा बुरा। एक प्रकाश में, दूसरा अंधकार में, एक अमृत, दूसरा मर्त्य। एक सत्य, दूसरा असत्य।

श्रीकृष्ण अर्जुन को यह कहकर प्रोत्साहित करते हैं कि वह आसुरी गुणों के साथ नहीं जन्मा है। युद्ध में उसका सम्मिलित होना आसुरी नहीं है, क्योंकि वह उसके गुण दोषों पर विचार कर रहा था इसलिए वह आसुरी गुण स्वभाव का नहीं है बल्कि वह दैवी गुणों से संपन्न होकर जन्म लिया है।

सत्रहवाँ अध्याय: सत्रहवाँ अध्याय श्रद्धात्रय विभाग योग है। इसका संबंध सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों से ही हैं अर्थात् जिसमें जिस गुण का प्रादुर्भाव होता है उसकी श्रद्धा या जीवन की निष्ठा वैसे ही बन जाती है। यज्ञ, तप, दान, कर्म यह सब तीन प्रकार की श्रद्धा से संचालित होते हैं। यहां तक की आहार भी तीन प्रकार का है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो लोग शास्त्रों के नियमों को जानते हैं लेकिन आलस्य के कारण इनका पालन नहीं करते हैं वे प्रकृति के गुणों द्वारा शासित होते हैं। वे अपने गुणों के अनुसार एक विशेष प्रकार का स्वभाव प्राप्त करते हैं। अतएव वह प्रकृति के गुणों के अनुसार ही विभिन्न प्रकार की मनोवृत्तियाँ अर्जित करता है लेकिन यदि कोई प्रामाणिक गुरु की संगति करता है और उसके तथा शास्त्रों के विधि विधानों का पालन करता है तो उसकी यह मनोवृत्ति बदल सकती है।

अष्टारहवाँ अध्याय: अष्टारहवाँ अध्याय मोक्ष सन्यास योग है। इसमें गीता के समस्त उपदेशों का सार है। श्रीकृष्ण ने मानव जीवन के लिए तीनों गुणों के महत्व के बारे में बताया है। पृथ्वी के मानवों में और स्वर्ग के देवताओं में कोई भी ऐसा नहीं है

जो प्रकृति के चलाए हुए इन तीन गुणों से बचा हो या उसमें न हो। धर्म और अधर्म को, बंधन और मोक्ष को, वृत्ति और निवृत्ति को जो बुद्धि ठीक से पहचान सके वही सात्त्विक बुद्धि है और वही मानव की सच्ची उपलब्धि है।

इस प्रकार भगवान ने जीवन के लिए व्यावहारिक मार्ग का उपदेश देकर अंत में कहा है कि मनुष्य को चाहिए कि संसार के सब व्यवहारों का सच्चाई से पालन करते हुए जो अखण्ड चौतन्य तत्व है उसमें विश्वास रखें, क्योंकि वही जीव की सत्ता है। वही चेतना है और वही सर्वोपरि आनंद का स्रोत है।

निष्कर्ष

अतः गीता की भूमिका, परिचय और अद्वारह अध्याय के संक्षिप्त वर्णन से यह स्पष्ट पता चलता है कि यह एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें दर्शन, धर्म और नीतिशास्त्र का समन्वय हुआ है। इसे श्रुति तो नहीं समझा जाता और न ही ईश्वरीय प्रेरणास्वरूप धर्मशास्त्र ही माना जाता है किंतु स्मृतियों में इसकी गणना होती है। यदि पूछा जाए कि कौन से ग्रंथ का मानव मस्तिष्क पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा तो यह कहा जा सकता है कि गीता भारतीय विचारधारा में सबसे अधिक प्रभावशाली ग्रंथ है और इसका प्रभाव मानव मस्तिष्क पर बहुत ज्यादा पड़ा और ऐसा कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

सन्दर्भ सूची

1. स्वामी रंगनाथानन्द (2009) *भगवद्गीता का सार्वजनीन संदेश*, रामकृष्ण मठ, नागपुर, वॉल्यूम-1, पृ. 2, 3, 4।
2. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद (1999) *भारतीय दर्शन की रूपरेखा*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 32, 35, 54।
3. राधाकृष्णन्, सर्वपल्ली (2015) *भारतीय दर्शन*, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, वॉल्यूम-1, पृ. 51, 52, 63।
4. स्वामी प्रभुपाद (1990) *श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप, भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट, मुम्बई*, पृ. 152, 153, 194, 207, 260, 273, 304, 339, 406, 452, 477-494, 547, श्लोक 4/7, 4/8, 5/18, 6/6, 7/21, 8/3, 9/17, 10/8, 18/56।
5. <https://www.rupanugabhajanashram.com>, Accessed on 22/06/2022.
